चरण लाल साहू

बनाम

ज्ञानी जैल सिंह और एक अन्य

(Charan Lal Sahu
Vs.
Giani Zail Singh and Another)

नेम चन्द्र जैन

बनाम

ज्ञानी जैल सिंह

(Nem Chandra Jain
Vs.
Giani Zail Singh)

तथा

चरण सिंह और अन्य

बनाम

ज्ञानी जैल सिंह

(Charan Singh and Others
Vs.
Giani Zail Singh)

(13 दिसम्बर, 1983)

(मुख्य न्यायमूर्ति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती, अमरेन्द्र नाथ सेन, डी० पी० मदान और एम० पी० ठक्कर)

राष्ट्रपतीय और उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1952 का 31)—धारा 113 (क), 14-क, 14, 5-ख (1) (क)—निर्वाचन अर्जी—राष्ट्रपति के निर्वाचन को चुनौती देते हुए निर्वाचन अर्जियों का इस आधार पर फाइल किया जाना कि अर्जीदार का नामनिर्देशन-पत्र का अस्वीकार किया जाना अवैध है ऐसा व्यक्ति जिसका नामनिर्देशन-पत्र धारा 5-ख (1) की

आज्ञापक अपेक्षाओं का अनुपालन करते हुए फाइल नहीं किया गया है, सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किए जाने का दावा नहीं कर सकता ।

राष्ट्रपतीय और उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1952 का 31)—धारा 14, 18, 19—निर्वाचन अर्जी—धारा 14 के अधीन फाइल की गई निर्वाचन अर्जी पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय इस प्रश्न की जांच नहीं कर सकता कि क्या निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद के लिए उपयुक्त है जिसके लिए उसका निर्वाचन किया गया है।

राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1952 का 31)—धारा 18(1)(क)—निर्वाचन अर्जी—असम्यक् असर—निर्वाचन अर्जीदार द्वारा यह अभिवचन किया जाना कि निर्वाचन में निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से असम्यक् असर डाला गया है—धारा 18(1)(क) की मुख्य अपेक्षा यह है कि असम्यक् असर निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा डाला जाना चाहिए—मौनानुकूलता सम्मति नहीं होती।

राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1952 का 31)—धारा 18(1)(क) [सपठित भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 171–ग]—निर्वाचित अर्जी—असम्यक् असर का अपराध—यदि मात्र संयाचना का कार्य किया जाता है, तो वह असम्यक् असर डालने की कोटि में नहीं आता—सरकारी तंत्र का उपयोग, पदीय स्थिति का दुरुपयोग और साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारना असम्यक् असर की कोटि में नहीं आता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 71(1) [सपठित राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 की धारा 18(1)]—अविधिमान्यता—धारा 18(1)(क), संविधान के अनुच्छेद 71(1) के अधिकारातीत नहीं है।

भारत के राष्ट्रपति के पद का निर्वाचन 12 जुलाई, 1982 को हुआ था। कुल मिलाकर 36 अभ्यर्थियों ने नाम-निर्देशन पत्र फाइल किए थे जिनमें श्री चरण लाल साहू, जो कि 1982 की अर्जी सं० 2 में

अर्जीदार हैं और श्री नेम चन्द्र जैन, जो कि 1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 3 में अर्जीदार हैं, शामिल हैं । रिटर्निंग आफिसर ने केवल दो अभ्यर्थियों के अर्थात् ज्ञानी जैल सिंह और श्री एच० आर० खन्ना जो कि उच्चतम न्यायालय के सेवा-निवृत्त न्यायाधीश हैं, नामनिर्देशन-पत्र स्वीकार किए । निर्वाचन का परिणाम 15 जुलाई, 1982 को भारत के असाधारण राजपत्र में प्रकाशित किया गया जिसमें ज्ञानी जैल सिंह को सफल अभ्यर्थी के रूप में घोषित किया गया । उन्होंने 25 जुलाई, 1982 को अपने पद के लिए शपथ ग्रहण की । उस परिणाम से व्यथित होने के कारण ये निर्वाचन अर्जियां भारत के राष्ट्रपति के रूप में, प्रत्यर्थी सं० 1, ज्ञानी जैल सिंह के निर्वाचन को चुनौती देने के लिए राष्ट्रपतीय और उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 की धारा 14 के अधीन फाइल की गईं । निर्वाचन अर्जी फाइल करने के मुख्य आधारों में से कुछ आधार ये हैं कि अर्जीदारों का नामनिर्देशन-पत्र अवैध रूप से अस्वीकृत किए गए थे जबकि निर्वाचित अभ्यर्थी के नामनिर्देशन-पत्र को अवैध रूप से स्वीकृत किया गया था । इसके अलावा निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से असम्यक् असर डाला गया है और यह कि निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद के योग्य नहीं है जिसके लिए वह चुना गया है । निर्वाचन अर्जियां खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—सुसंगत उपबंधों के अनुसार ऐसी तीन पूर्व-शर्तें हैं जो कि निर्वाचन अर्जी को शासित करती हैं जिसके द्वारा राष्ट्रपतीय निर्वाचन को चुनौती दी जाती है । प्रथमतः, ऐसी अर्जी उच्चतम न्यायालय में फाइल करनी होती है । द्वितीयतः, अर्जी में राष्ट्रपतीय और उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 की धारा 18 की उपधारा (1) में या धारा 19 में विनिर्दिष्ट आधारों में से एक या अधिक आधारों पर निर्वाचन को चुनौती देने की बात प्रकट की जानी चाहिए । दूसरी बात यह है कि निर्वाचन अर्जी केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा जो कि राष्ट्रपतीय निर्वाचन में अभ्यर्थी था या अर्जीदार के रूप में संयुक्त बीस या अधिक निर्वाचकों द्वारा उपस्थित की जा सकती है । चूंकि दो निर्वाचन अर्जियां, जो कि इस समय विचाराधीन हैं, बीस या अधिक निर्वाचकों द्वारा फाइल नहीं की गई हैं, इसलिए विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि क्या संबंधित निर्वाचन अर्जियों के दोनों अर्जीदार भारत के राष्ट्रपति के पद के लिए हुए निर्वाचन में अभ्यर्थी थे । (पैरा 9)

1983(12) eILR(PAT) SC 43

उक्त अधिनियम की धारा 13 (क) में आए हुए 'अभ्यर्थी' शब्द में दो भाग हैं। 'अभ्यर्थी' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो कि राष्ट्रपतीय निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है या जिसका दावा यह है कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है। इन अर्जीदारों में से कोई भी सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट नहीं किया गया था। यह निर्विवाद्य है। अधिनियम की धारा 5ख (1) (क) में यह उपबंध किया गया है कि नामनिर्देशन के लिए नियत तारीख को या उसके पूर्व प्रत्येक अभ्यर्थी विहित प्ररूप में पूरित नामनिर्देशन पत्र जो कि नामनिर्देशन के प्रति सम्मति देते हुए अभ्यर्थी द्वारा और "राष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, प्रस्थापकों के रूप में कम से कम दस निर्वाचकों द्वारा तथा समर्थकों के रूप में दस निर्वाचकों द्वारा हस्ताक्षरित हो, रिटर्निंग आफिसर को परिदत्त करेगा।" यह दोनों पक्षों का आधार है कि दोनों अर्जीदारों द्वारा फाइल किए गए नामनिर्देशन पत्रों पर प्रस्थापकों के रूप में दस निर्वाचकों द्वारा और समर्थकों के रूप में दस निर्वाचकों द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे। वास्तव में, निश्चित रूप से इसी कारण से ही दोनों अर्जीदारों द्वारा फाइल किए गए नामनिर्देशन-पत्रों को रिटर्निंग आफिसर ने अस्वीकृत कर दिया था। चूंकि दोनों अर्जीदारों के नामनिर्देशन पत्रों पर अधिनियम की धारा 5ख (1) (क) द्वारा यथापेक्षित हस्ताक्षर नहीं हुए थे, इसलिए इससे यह अर्थ निकलता है कि वे निर्वाचन में अभ्यर्थियों के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट नहीं किए गए थे। यह सच है कि अभ्यर्थिता के दावे के विषय में, ऐसा व्यक्ति जो कि यह दावा करता है कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है, उस व्यक्ति के समान है, जिसे वास्तव में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था। किन्तु सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किए जाने का दावा ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता जिसका नामनिर्देशन-पत्र अधिनियम की धारा 5ख(1) (क) की आज्ञापक अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं करता है। अर्थात् यह कि ऐसा व्यक्ति जिसके नामनिर्देशन-पत्र पर, स्वीकृत प्रस्थापकों और समर्थकों के रूप में अपेक्षित संख्या के निर्वाचकों द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे, यह दावा नहीं कर सकता कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था। ऐसा दावा केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जो यह दर्शित कर सके कि उसका नामनिर्देशन-पत्र धारा 5ख(1) (क) के उपबंधों के अनुसार था, किन्तु फिर भी

जिसे रिटर्निंग आफिसर ने अस्वीकृत कर दिया था, अर्थात् यह कि उसे गलत ढंग से अस्वीकृत कर दिया गया था। उदाहरणार्थ, यदि रिटर्निंग आफिसर इस आधार पर नामनिर्देशन-पत्र अस्वीकृत करता है कि दस हस्ताक्षरकर्ताओं में से, जिन्होंने कि नामनिर्देशन के लिए प्रस्थापना की थी, एक निर्वाचक नहीं है तो अर्जीदार यह दावा कर सकता है कि उसे उस दशा में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया है, यदि उसने यह साबित कर दिया है कि उक्त प्रस्थापक वास्तव में निर्वाचक था। इस प्रकार किसी व्यक्ति के लिए यह दावा करने का अवसर कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था, केवल तभी आ सकता है, यदि उसका नामनिर्देशन-पत्र उन कानूनी अपेक्षाओं का अनुपालन करता है जो कि नामनिर्देशन-पत्र के फाइल करने की बात को शासित करती हैं, न कि अन्यथा। इस दावे में कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था आवश्यक रूप से यह विवक्षित है और उसमें यह दावा अन्तर्ग्रस्त है कि उसका नामनिर्देशन-पत्र कानून की अपेक्षाओं के अनुसार था। अतः निर्वाचन लड़ने वाला ऐसा व्यक्ति जिसके नाम निर्देशन-पत्र पर प्रस्थापकों के रूप में कम से कम दस निर्वाचकों ने और समर्थकों के रूप में कम से कम दस निर्वाचकों ने हस्ताक्षर किए हैं, जैसा कि अधिनियम की धारा 5ख (1) (क) द्वारा अपेक्षित है, यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे ऐसे निर्वाचन लड़ने वाले की बनिस्बत जिसने अपने ही नामनिर्देशन के संबंध में अपनी सम्मति नहीं दी है, किसी भी प्रकार से अधिक सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया है, दावा कर सकता है। निर्वाचन लड़ने वाले व्यक्ति का यह दावा कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया था, अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन से अवश्य ही उद्भूत होना चाहिए। वह अधिनियम के अतिक्रमण से किसी भी प्रकार से उद्भूत नहीं हो सकता। अन्यथा ऐसा व्यक्ति जिसने अपना नाम निर्देशन-पत्र बिलकुल ही फाइल नहीं किया था, किन्तु जिसने मौखिक रूप से रिटर्निंग आफिसर को यह इत्तिला दे दी थी कि वह निर्वाचन लड़ना चाहता है, यह दलील दे सकता है कि उसे अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है। न केवल अधिनियम की धारा 5ख (1) (क) की आज्ञापक अपेक्षाओं के अननुपालन के आधार पर वे नामनिर्देशनपत्र ठीक तौर से अस्वीकृत किए गए थे, बल्कि अर्जीदारों का यह पक्षकथन है कि

उनके नामनिर्देशन-पत्र रिटर्निंग आफिसर द्वारा पूर्वोक्त उपबंध के अननुपालन के आधार पर अस्वीकृत किए गए थे । इस प्रकार उनका यह दावा है कि उन्हें सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है, अधिनियम की परिधि के भीतर नहीं है, बल्कि उसके बाहर है । उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता । (पैरा 10, 11, 12 और 13)

अधिनियम की धारा 5ख(1)(क) में अन्तर्विष्ट उपबंध को अर्जीदार द्वारा इस आधार पर जो चुनौती दी गई है कि वह अभिकथित रूप से अयुक्तियुक्त है, उसमें कोई सार नहीं है । इसके अलावा, यदि अर्जीदारों को निर्वाचन अर्जियां फाइल करने का कोई भी अधिकार नहीं है, तो उनकी सुनवाई इन अर्जियों में दी गई इन दलीलों में से किसी भी आधार पर नहीं की जा सकती । तदनुसार, प्रारंभिक विवाद्यक के संबंध में न्यायालय का जो निष्कर्ष है, वह अर्जीदारों के विरुद्ध है । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि उन्हें निर्वाचन अर्जियां फाइल करने का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है, क्योंकि इन्हें न तो सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था और न ही वे इस बात का दावा करते हैं कि इन्हें राष्ट्रपतीय निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया है । (पैरा 15 और 16)

अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल की गई निर्वाचन अर्जी पर विचार करते हुए यह न्यायालय इस प्रश्न की जांच नहीं कर सकता, कि क्या निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद के लिए उपयुक्त है जिसके लिए वह निर्वाचित किया गया है । निर्वाचनों से उद्भूत होने वाले अधिकार जिनमें कोई निर्वाचन लड़ने या उसे चुनौती देने का अधिकार भी शामिल है, कामन ला विषयक आधार नहीं है । अतः इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए कि क्या कोई निर्वाचन किसी अभिकथित आधार पर अपास्त किया जा सकता है, न्यायालयों को, विशिष्ट निर्वाचकों को शासित करने वाली विधि के उपबंधों को देखना होता है । उन्हें उस विधि की परिधि के भीतर ही कार्य करना होता है और वे उसके बाहर नहीं जा सकते केवल वे व्यक्ति ही जिनको कानून द्वारा मत देने का अधिकार प्रदत्त किया गया है, निर्वाचन में मत दे सकते हैं। कोई निर्वाचन कानून द्वारा विहित रीति से प्रश्नगत किया जा सकता है न कि किसी अन्य रीति से ।

अतः निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को राष्ट्रपति का पद धारण करने संबंधी उसकी उपयुक्तता के अभाव के आधार पर जो चुनौती दी गई है, उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और उसे अस्वीकार करना ही पड़ेगा। प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को अर्जीदारों द्वारा दी गई मुख्य चुनौतियों में से एक चुनौती यह है कि वह भारत के राष्ट्रपति के उच्च पद को धारण करने के लिए 'उपयुक्त' व्यक्ति नहीं है। अर्जीदारों ने अर्जी के पैरा 5 से लेकर 8 में अपनी इस दलील के समर्थन में अपने ही कारण बताए हैं। भारत के राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद को धारण करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है। तदनुसार, निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को इस आधार पर दी गई चुनौती कि वह भारत के राष्ट्रपति का पद धारण करने के लिए उपयुक्त नहीं है, असफल हो गई और अस्वीकृत कर दी गई। इस विवाद्यक से संबंधित न्यायालय का निष्कर्ष नकारात्मक है। (पैरा 24, 20 और 26)

इस विधिक स्थिति के अलावा कि निर्वाचन से उत्पन्न होने वाले अधिकार क़ानूनी हैं न कि कॉमन लॉ विषयक अधिकार, यह कल्पना करना असंभव है कि कोई न्यायालय किसी निर्वाचन को शून्य घोषित करने की शक्ति इस आधार पर अपने पास ले लेगा कि निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद को धारण करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है जिसके लिए वह निर्वाचित किया गया है। किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता के संबंध में निर्णय करने का कार्य मतदाताओं का है न कि न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाने का। न्यायालय मतदाताओं द्वारा व्यक्त अभिमत के स्थान पर किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता का अपना ही जायजा प्रतिस्थापित नहीं कर सकता। मतदाताओं का अभिमत प्रत्यर्थी की उपयुक्तता के संबंध में अभिमत होता है। 'उपयुक्तता' निश्चित अभिप्राय की अस्थिर संकल्पना है। मत पेटी ही उसका एकमात्र निर्णायक है या उसे एकमात्र निर्णायक मानना पड़ेगा। यदि न्यायालय को इस आधार पर किसी निर्वाचन को अपास्त करने की शक्ति का प्रयोग करना पड़े कि उसकी राय में निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है, जिसके लिए वह निर्वाचित किया गया है, तो कानून को इतना अधिक संशोधित करना होगा जिससे कि

1983(12) eILR(PAT) SC 43

न्यायालय को वस्तुतः प्रतिद्वंदी अभ्यर्थियों की उपयुक्तता के प्रश्न पर विशेषाधिकार का अधिकार देने के समान होगा और फिर असफल अभ्यर्थी सफल अभ्यर्थी के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती देगा कि वह पश्चात्‌कथित से अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार का कार्य न्यायालयों द्वारा अपने हाथ में लेना असंभव है और वास्तव में सर्वाधिक उदार मानक के आधार पर भी वह न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमाओं से कहीं परे है। (पैरा 25)

रिश्वत का प्रश्न एक तरफ रखना उचित होगा क्योंकि उस निमित्त कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है। न ही यह अभिकथित है कि असम्यक् असर का अपराध स्वयं निर्वाचित अभ्यर्थी ने किया था। अर्जीदारों का अभिकथन यह है कि प्रत्यर्थी सं० 1 के कतिपय समर्थकों और निकट सहयोगियों ने उसकी मौनानुकूलता के असम्यक् असर का अपराध किया है। यह स्पष्ट है कि यदि इस अभिकथन को सच मान लिया जाए तो भी धारा 18 (1) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति करने के लिए वह काफी नहीं है। जिस सीमा तक वह धारा सुसंगत है, उस तक वह जिस बात की अपेक्षा करती है, वह यह है कि असम्यक् असर का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी की 'सम्मति' से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। अर्जी में इस संबंध में कोई भी अभिवाक् नहीं किया गया है कि उन अन्य व्यक्तियों ने प्रत्यर्थी सं० 1 की सम्मति से असम्यक असर डाला था। (पैरा 29)

स्वीकृततः सम्मति के संबंध में कोई भी अभिवचन नहीं है। यह कहना कोई उत्तर नहीं है कि अर्जीदारों ने मौनानुकूलता संबंधी अभिवचन किया है और शब्दकोशों के अनुसार मौनानुकूलता से सम्मति अभिप्रेत है। सम्मति का अभिवाक् एक बात है। यह तथ्य कि मौनानुकूलता से सम्मति अभिप्रेत है बिलकुल दूसरी बात है। निर्वाचन अर्जी में अर्जीदार को यह अधिकार नहीं है कि वह पर्यायवाची पदों के आधार पर अभिवचन करे। इन अर्जियों में, जो अभिवचन किए जाते हैं, उन्हें निश्चित, विनिर्दिष्ट और असंदिग्ध होना चाहिए जिससे कि प्रत्यर्थी को उसकी परिधि के भीतर लाया जा सके। अभिवचन का यह नियम कि वाद हेतुक गठित करने वाले तथ्यों के संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन किया जाना चाहिए,

उतना ही आधारभूत है जितना कि मौलिक। 'मौनानुकूलता' कतिपय स्थितियों में सम्मति की कोटि में आ सकती है जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि शब्दकोशों ने 'कनाइवेन्स' (मौनानुकूलता) शब्द के अर्थों में से एक अर्थ के रूप में 'कांसेंट' (सम्मति) को दिया है। किन्तु यह कहना सही नहीं है कि मौनानुकूलता से सदैव और निश्चित रूप से अर्थात् किसी विशिष्ट स्थिति के संदर्भ को विचार में लिए बिना ही सम्मति अभिप्रेत है या वह सम्मति की कोटि में आती है। अतः दोनों को समान नहीं ठहराया जा सकता। सम्मति से यह विवक्षित है कि पक्षकार एक हैं। मौनानुकूलता से निश्चित रूप से यह विवक्षित नहीं होता है कि पक्षकारों का मस्तिष्क एक है। वे एक हो सकते हैं और एक नहीं भी हो सकते जो बात स्थिति के तथ्यों पर निर्भर होती है। यही कारण है कि इस अभिवचन के अभाव में कि असम्यक् दबाव डालने का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से किया गया था, धारा 18(1)(क) की मुख्य बातों में से एक बात की पूर्ति नहीं हुई है। (पैरा 30)

इन विषयों में विनिर्दिष्ट अभिवचन के महत्व को तभी समझा जा सकता है यदि यह महसूस कर लिया जाता है कि विनिर्दिष्ट अभिवाक् के अभाव में प्रत्यर्थी को काफी नुकसान होता है। उसे यह अवश्य ही ज्ञात होना चाहिए कि उसे अपना पक्षकथन किस प्रकार प्रस्तुत करना है। वह इस बात के संबंध में अटकल नहीं लगाते रह सकता कि क्या अर्जीदार का वही अभिप्राय है जो कि वह कहता है, अर्थात् यह कि क्या उसका अभिप्राय यहां पर मौनानुकूलता से है या कि क्या अर्जीदार ने उस अभिव्यक्ति का उपयोग 'सम्मति' के अर्थ में किया है। तदनुसार, मौनानुकूलता शब्द के लिए सम्मति शब्द प्रतिस्थापित करना अननुज्ञेय है जो कि अर्जीदारों के अभिवचनों में आया हुआ है। (पैरा 31)

यदि मौनानुकूलता का वही अर्थ था जो कि सम्मति का था औ यदि दोनों एक ही बात थी तो संसद् 'मौनानुकूलता' शब्द लुप्त करने का और उसके स्थान पर 'सम्मति' शब्द प्रतिस्थापित करने का जानबूझकर कदम न उठाती। 1974 के संशोधन अधिनियम द्वारा किए गए संशोधन से यह दर्शित होता है कि मौनानुकलता और सम्मति अधिनियम की धारा 18(1)(क) के प्रयोजनार्थ सुभिन्न संकल्पनाएं हैं। (पैरा 32)

1983(12) eILR(PAT) SC 43

इस धारा का सार यह है कि किसी निर्वाचन अधिकार के 'निर्बाध प्रयोग' में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए या हस्तक्षेप की कोशिश नहीं होनी चाहिए। 'निर्वाचन अधिकार' की परिभाषा धारा 171 क(ख) में दी गई है जिससे किसी निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में खड़े होने या खड़े न होने या अभ्यर्थिता से अपना नाम वापस लेने या मत देने या मत देने से विरत रहने का किसी व्यक्ति का अधिकार अभिप्रेत है। अतः इस दृष्टि से कि असम्यक् असर के अपराध के बारे में यह कहा जा सके कि वह दण्ड संहिता की धारा 171 ग के अर्थान्तर्गत किया गया है अभ्यर्थी के लिए संयाचना करने के कार्य मात्र से कोई बात अधिक दर्शित की जानी चाहिए जिसे कि अपराधी ने किया है। उदाहरण के लिए, किसी अभ्यर्थी या मतदाता को क्षति पहुंचाने की धमकी की प्रकृति में कोई बात कही जा सकती है जैसा कि दण्ड संहिता की धारा 171 ग की उपधारा 2 (क) में बताया गया है, या वह अभ्यर्थी या मतदाता के मस्तिष्क में दैवी अप्रसाद का विश्वास उत्पन्न करने की बात हो सकती है जैसा कि उपधारा 2 (ख) में बताया गया है। यह अभिकथित कार्य जो कि असम्यक् अपराध गठित करता है, अभ्यर्थी या मतदाता के मस्तिष्क पर दबाव या अत्याचार की प्रकृति में होना चाहिए। विभिन्न प्रकार के ऐसे कार्यों को जो कि असम्यक् असर की परिभाषा के भीतर आते हैं, सर्वांगीण रूप से प्रगणित करना संभव नहीं है। इस प्रयोजन के लिए यह कहना पर्याप्त है कि एक बार के संबंध में कोई भी सन्देह नहीं हो सकता। अभ्यर्थी के लिए संयाचना करने का कार्य मात्र दण्ड संहिता की धारा 171 ग के अर्थान्तर्गत असम्यक् असर की कोटि में नहीं आ सकता। (पैरा 35)

प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को अविधिमान्य ठहराने के लिए अर्जीदारों द्वारा अभिकथित शेष आधार भ्रामक हैं। विधानमण्डल ने सरकारी तंत्र का उपयोग, शासकीय स्थिति का दुरुपयोग और साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारने की अपील जहां तक कि ऐसी अपील असम्यक् असर की कोटि में नहीं आती है, इन बातों को ऐसी परिस्थितियां नहीं समझा है जो कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को अविधिमान्य ठहराएंगी। अतः यह मानते हुए कि ऐसे कोई कार्य किए गए हैं, प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के लिए उनका अवलम्ब नहीं

1983(12) eILR(PAT) SC 43

लिया जा सकता। निर्वाचन विधियां स्वयं पूर्ण संहिताएं हैं और निर्वाचनों से उद्भूत होने वाले अधिकार उन विधियों के परिणाम लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के उपबंधों को विचाराधीन कानून पर लादा नहीं जा सकता और तद्द्वारा राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को चुनोती देने के लिए निर्वाचन अर्जी की परिधि में वृद्धि नहीं कर सकते। ऐसा निर्वाचन अधिनियम की धारा 18 (1) में विनिर्दिष्ट आधारों पर ही अपास्त किया जा सकता है। चूंकि अर्जीदारों द्वारा किए गए अन्य अभिकथन उक्त उपबंध को परिधि के भीतर नहीं आते हैं, इसलिए उन्हें खारिज करना ही होगा। (पैरा 40)

यहां पर इस बात को नजरअन्दाज कर दिया गया है कि अनुच्छेद 71 का खण्ड (3) संसद को, संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति के निर्वाचनों से संबंधित या से संसक्त विषयों को विनियमित करने की विधि बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है। अनुच्छेद 71 (3) द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुसरण में विधि अधिनियमित करते हुए संसद को किन्हीं भी प्रकार की विशिष्ट शंकाओं और विवादों को विनिर्दिष्ट करने का हक होता है जिनकी जांच या विनिश्चय उच्चतम न्यायालय करेगा। यदि अर्जीदारों की दलील ठीक होती तो हर प्रकार के काल्पनिक सन्देह या तुच्छ विवाद की जो इस धरती पर उत्पन्न हो सकता है, जांच इस न्यायालय को करनी होगी और निर्वाचन अर्जियां राजनीतिक युद्ध लड़ने की उपजाऊ भूमि का काम करेंगी। जैसी कि वस्तुस्थिति है, ऐसा अभ्यर्थी जो कि राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन लड़ना चाहता है, तृतीय अनुसूची द्वारा विहित प्ररूप में से किसी में भी शपथ नहीं ले सकता उस अनुसूची में ऐसे व्यक्ति के लिए जो कि राष्ट्रपति का निर्वाचन लड़ना चाहता है, शपथ लेने के लिए कोई भी प्ररूप विहित नहीं किया गया है। (पैरा 42 और 43)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[1978] [1978] 3 उम० नि० प० 1=[1978] 3 एस० सी० आर० 1:
चरन लाल साहू बनाम **नीलम संजीवा रेड्डी** (Charan Lal Sahu *V.* Neelam Sanjeeva Reddy); 15

[1976] [1976] 2 उम० नि० प० 118=
[1971] 2 एस० सी० आर० 197 :
शिव कृपाल सिंह बनाम श्री वी० वी० गिरी
(Shiv Kirpal Singh *V.* Shri V.V. Giri); 37

[1975] ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1288 :
चरण लाल साहू बनाम श्री फखरुद्दीन अली अहमद
(Charan Lal Sahu *V.* Shri Fakruddin Ali Ahmed); 14

[1973] [1973] 3 उम० नि० प० 773=
[1974] 2 एस० सी० आर० 294 :
चरण लाल साहू बनाम नन्द किशोर भट्ट
(Charan Lal Sahu *V.* Nand Kishore Bhatt); 24

[1969] [1969] 1 उम० नि० प० 304=
[1969] 1 एस० सी० आर० 679:
के० वेंकटेश्वर राव बनाम बेक्कम नरसिंह रेड्डी
(K. Venkateswara Rao *V.* Bekkam Narsimha Reddy); 24

[1968] [1968] 2 एस० सी० आर० 133 :
बाबू राव पटेल बनाम डा० जाकिर हुसैन
(Baburao Patel *V.* Dr. Zakir Husain); 36

[1959] [1959] सप्ली० 2 एस० सी० आर० 748 :
राम दयाल बनाम संतलाल
(Ram Dial *V.* Sant Lal); 38

सिविल अपीली अधिकारिता : 1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 2, 3 और 4.

संविधान के अनुच्छेद 71 के अधीन फाइल की गई अर्जियां।

1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 2 में

अर्जीदार की ओर से स्वयं

अर्जीदार की ओर से सर्वश्री हरी शंकर और के० के०
(1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 3 में) गुप्ता

अर्जीदार की ओर से (1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 4 में)	सर्वश्री शुजातुल्ला खां और के० के० गुप्ता
प्रत्यर्थियों की ओर से (निर्वाचन अर्जी सं० 2/82 में)	सर्वश्री ओ० पी० शर्मा, आर० सी० गुब्रेले, के० आर० गुप्ता और आर० सी० भाटिया
प्रत्यर्थी की ओर से (1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 3 में)	सर्वश्री पी० आर० मृदुल, ए० के० सेन, ओ० पी० शर्मा, आर० सी० गुब्रेले, के० आर० गुप्ता और आर० सी० भाटिया
प्रत्यर्थी की ओर से (1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 4 में)	सर्वश्री ए० के० सेन, जे० एस० बासु, ओ० पी० शर्मा, आर० सी० गुब्रेले, के० आर० गुप्ता और आर० सी० भाटिया
प्रत्यर्थी की ओर से (सभी निर्वाचन अर्जियों में)	श्री के० पारासरण, अटर्नी जनरल और श्री आर० डी० अग्रवाल
मध्यक्षेपियों की ओर से	सर्वश्री पी० एन० डुडा, एच० एल० टिक्कुम, डी० एस० नरूला, विजय पण्डित और ई० सी० अग्रवाल
मध्यक्षेपियों की ओर से	श्री ए० एस० पुंदीर
मध्यक्षेपियों की ओर से	श्री डी० वी० वोहरा

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायामूर्ति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया ।

मुख्य न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़—

ये निर्वाचन अर्जियां भारत के राष्ट्रपति के रूप में, प्रत्यर्थी सं 1, ज्ञानी जैल सिंह के निर्वाचन को चुनौती देने के लिए राष्ट्रपतीय और

उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 की धारा 14 के अधीन फाइल की गई हैं। भारत के राष्ट्रपति के पद का निर्वाचन 12 जुलाई, 1982 को हुआ था। कुल मिलाकर 36 अभ्यर्थियों ने नाम-निर्देशन पत्र फाइल किए थे जिनमें श्री चरण लाल साहू, जो कि 1982 की अर्जी सं० 2 में अर्जीदार है और श्री नेम चन्द्र जैन, जो कि 1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 3 में अर्जीदार है, शामिल हैं। रिटर्निंग आफिसर ने केवल दो अभ्यर्थियों के नाम निर्देशन-पत्र स्वीकार किए : ज्ञानी ज़ैल सिंह और श्री एच० आर० खन्ना, जो कि इस न्यायालय के सेवा-निवृत्त न्यायाधीश हैं। निर्वाचन का परिणाम 15 जुलाई, 1982 को भारत के असाधारण राजपत्र में प्रकाशित किया गया जिसमें ज्ञानी ज़ैल सिंह को सफल अभ्यर्थी के रूप में घोषित किया गया। उन्होंने 25 जुलाई, 1982 को अपने पद के लिए शपथ ग्रहण की।

2. हम सबसे पहले विचार के लिए 1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 2 और 3 को लेंगे जिन्हें क्रमशः श्री चरण लाल साहू और श्री नेम चन्द्र जैन, जिनमें से दोनों ही प्रसंगवश अधिवक्ता हैं, फाइल किया है।

1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 2 और 3

3. 1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 2 में, पिटीशनर ने निम्नलिखित अनुतोषों की मांग की है —

"(1) यह कि संविधान (ग्यारहवां संशोधन) अधिनियम, 1961 को संविधान के अधिकारातीत घोषित किया जाए।

(2) यह कि निर्वाचन नियम, 1974 सहित राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय अधिनियम, 1952 (यथा संशोधित) की धारा 5 (ख) (6) और 5 (ग) तथा 21 (3) को संविधान के अनुच्छेद 58 के अधीन अवैध, शून्य और असंवैधानिक घोषित किया जाए।

(3) यह कि प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों के पदों के संबंध में यह घोषित किया जाए कि वे लाभ के पद हैं क्योंकि उन्होंने निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन में असम्यक् असर डाला है।

1983(12) eILR(PAT) SC 43

(4) यह कि प्रत्यर्थी सं० 1 (निर्वाचित अभ्यर्थी) का निर्वाचन अधिनियम की धारा 18 के अधीन शून्य घोषित किया जाए और प्रत्यर्थी सं० 2 के नामनिर्देशन के बारे में यह घोषित किया जाए कि वह अवैध रूप से स्वीकार किया गया है, इस प्रकार से अर्जीदार को, जैसा कि अर्जी में कथन किया गया है, संविधान के अधीन राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित घोषित किया जाए ।

(5) यह कि राष्ट्रपति के निर्वाचन की उपर्युक्त पद्धति अवैध, असंवैधानिक है और इसी कारण से उसका निर्वाचन भविष्य में सभी निर्वाचकों द्वारा सीधे ही किया जाना चाहिए और भारत संघ को यह निदेश दिया जाए कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 54, 55 और 56 में संशोधन करे ।

(6) यह कि मंत्रियों सम्बलमों और भत्ते से संबंधित अधिनियम, 1952 (1952 का अधिनियम सं० 58) की धारा 4 (1) (2), 5, 6, 7 और 11 तथा इसके साथ-साथ संसद सदस्य वेतन और भत्ता अधिनियम, 1954 की धारा 3, 4, 5, 6, 7, 8 और 9 को शून्य और असंवैधानिक घोषित किया जाए ।" (यह अच्छा ही हुआ कि हमने प्रार्थना से संबंधित खण्डों पर विचार नहीं किया ।)

4. 1982 की अर्जी सं० 3 में अर्जीदार की प्रार्थना यह है कि प्रत्यर्थी सं० 1 का निर्वाचन अर्जी में उल्लिखित विभिन्न आधारों पर अपास्त कर दिया जाए ।

5. अनेक अस्पष्ट, असंयंत और अचिन्तित पूर्व अभिकथन करने के अलावा, अर्जीदारों ने यह अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी सं० 1 ने अपने विश्वासपात्रों के जरिए मतदाताओं पर असम्यक् असर डाला है । हम इन अभिकथनों को अविकल रूप से उद्धृत करना आवश्यक नहीं समझते हैं क्योंकि हमारी राय यह है कि ये अर्जियां चलने योग्य नहीं हैं ।

6. श्री अशोक सेन, जो कि प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से उपस्थित हुए हैं और विद्वान अटर्नी जनरल ने इन अर्जियों के चलने की योग्यता पर प्रारंभिक आक्षेप किया है। उनकी दलील यह है कि इन दोनों अर्जीदारों

में से कोई भी अधिनियम की धारा 13 (1) के अर्थान्तर्गत 'अभ्यर्थी' नहीं है और चूंकि धारा 14क के अधीन निर्वाचन अर्जी केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा ही फाइल की जा सकती है जो कि निर्वाचन में अभ्यर्थी था, इसलिए अर्जीदारों को अर्जी फाइल करने का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है और इसी कारण से अर्जियां इस आधार पर खारिज कर दी जानी चाहिएं कि वे चलने योग्य नहीं हैं।

7. चूंकि अर्जीदारों ने इस अभिकथन का प्रतिवाद किया कि उन्हें अर्जी फाइल करने का कोई भी अधिकार नहीं है, इसलिए हमने दो निर्वाचन अर्जियों में से प्रत्येक में प्रारम्भिक विवाद्यक के रूप में निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किया—

> "क्या अर्जीदार को इस आधार पर अर्जी फाइल करने का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 की धारा 14क के साथ पठित धारा 13 (क) के अर्थान्तर्गत अभ्यर्थी नहीं है ?"

8. अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (1) में यह उपबंध किया गया है कि कोई भी निर्वाचन उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित की गई निर्वाचन अर्जी द्वारा प्रश्नगत किए जाने के सिवाय प्रश्नगत नहीं किया जाएगा। उपधारा (2) के अनुसार निर्वाचन अर्जी का विचारण करने की अधिकारिता रखने वाला प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय है। अधिनियम की धारा 14क (1) द्वारा निर्वाचन अर्जी ऐसे निर्वाचन में किसी अभ्यर्थी द्वारा या राष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, अर्जीदार के रूप में संयुक्त 20 या अधिक निर्वाचकों द्वारा, धारा 18 (1) और 19 में विनिर्दिष्ट आधारों पर उपस्थित की जा सकेगी। अधिनियम की धारा 13 (क) में यह उपबंध किया गया है कि "जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, अभ्यर्थी से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट हुआ है या नामनिर्दिष्ट होने का दावा करता है"।

9. इन उपबंधों से यह दर्शित होता है कि ऐसी तीन पूर्व शर्तें हैं जो कि निर्वाचन अर्जी को शासित करती हैं जिसके द्वारा राष्ट्रपतीय निर्वाचन को चुनौती दी जाती है। प्रथमतः, ऐसी अर्जी उच्चतम न्यायालय में फाइल करनी होती है। द्वितीयतः, अर्जी में धारा 18 की उपधारा (1) में

1983(12) eILR(PAT) SC 43

या धारा 19 में विनिर्दिष्ट आधारों में से एक या अधिक आधारों पर निर्वाचन को चुनौती देने की बात प्रकट की जानी चाहिए। दूसरी बात और जो कि हमारे प्रयोजन के लिए महत्वपूर्ण है, यह है कि निर्वाचन अर्जी केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा जो कि राष्ट्रपतीय निर्वाचन में अभ्यर्थी था या अर्जीदार के रूप में संयुक्त बीस या अधिक निर्वाचकों द्वारा उपस्थित की जा सकती है। चूंकि दो निर्वाचन अर्जियां, जो कि इस समय हमारे बिचाराधीन हैं बीस या अधिक निर्वाचकों द्वारा फाइल नहीं की गई हैं, इसलिए हमारे विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि क्या संबंधित निर्वाचन अर्जियों के दोनों अर्जीदार भारत के राष्ट्रपति के पद के लिए हुए निर्वाचन में अभ्यर्थी थे।

10. अधिनियम की धारा 13 (क) में आए हुए 'अभ्यर्थी' शब्द में दो भाग हैं। 'अभ्यर्थी' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो कि राष्ट्रपतीय निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है या जिसका दावा यह है कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है। इन अर्जीदारों में से कोई भी सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट नहीं किया गया था। यह निर्विवाद है। अधिनियम की धारा 5ख (1) (क) में यह उपबंध किया गया है कि नामनिर्देशन के लिए नियत तारीख को या उसके पूर्व प्रत्येक अभ्यर्थी विहित प्ररूप में पूरित नामनिर्देशन पत्र जोकि नामनिर्देशन के प्रति सम्मति देते हुए, अभ्यर्थी द्वारा और "राष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, प्रस्थापकों के रूप में कम से कम दस निर्वाचकों द्वारा तथा समर्थकों के रूप में दस निर्वाचकों द्वारा हस्ताक्षरित हो, रिटर्निंग आफिसर को परिदत्त करेगा।" यह दोनों पक्षों का आधार है कि दोनों अर्जीदारों द्वारा फाइल किए गए नामनिर्देशन पत्रों पर प्रस्थापकों के रूप में दस निर्वाचकों द्वारा और समर्थकों के रूप से दस निर्वाचकों द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे। वास्तव में, निश्चित रूप से इसी कारण से ही दोनों अर्जीदारों द्वारा फाइल किये गए नाम-निर्देशन पत्रों को रिटर्निंग आफिसर ने अस्वीकृत कर दिया था। चूंकि दोनों अर्जीदारों के नामनिर्देशन पत्रों पर अधिनियम की धारा 5ख (1) (क) द्वारा यथा-अपेक्षित हस्ताक्षर नहीं हुए थे, इसलिए इससे यह अर्थ निकलता है कि वे निर्वाचन में अभ्यर्थियों के रूप में सम्यक् रूप से नाम-निर्दिष्ट नहीं किए गए थे।

11. तथापि अर्जीदारों की दलील यह है कि यदि यह अभिनिर्धारित कर दिया जाए कि वे अभ्यर्थियों के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट

नहीं किये गए थे, तो भी उनकी अर्जियां इस आधार पर खारिज की जा सकती है क्योंकि उनका दावा यह है कि उन्हें सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया है। यह सच है कि अभ्यर्थिता के दावे के विषय में, ऐसा व्यक्ति जो कि यह दावा करता है कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है, उस व्यक्ति के समान है, जिसे वास्तव में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था। किन्तु सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किए जाने का दावा ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता जिसका नामनिर्देशन पत्र अधिनियम की धारा 5(ख)(1)(क) की आज्ञापक अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं करता है। अर्थात् यह कि ऐसा व्यक्ति जिसके नामनिर्देशन पत्र पर, स्वीकृततः प्रस्थापकों और समर्थकों के रूप में अपेक्षित संख्या के निर्वाचकों द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे, यह दावा नहीं कर सकता कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था। ऐसा दावा केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जो यह दर्शित कर सके कि उसका नामनिर्देशन-पत्र धारा 5ख(1)(क) के उपबंधों के अनुसार था, किन्तु फिर भी जिसे रिटर्निंग आफिसर ने अस्वीकृत कर दिया था, अर्थात् यह कि उसे गलत ढंग से अस्वीकृत कर दिया गया था। उदाहरणार्थ, यदि रिटर्निंग आफिसर इस आधार पर नामनिर्देशन-पत्र अस्वीकृत करता है कि दस हस्ताक्षरकर्ताओं में से, जिन्होंने कि नामनिर्देशन के लिए प्रस्थापना की थी, एक निर्वाचक नहीं है, तो अर्जीदार यह दावा कर सकता है कि उसे उस दशा में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया है यदि उसने यह साबित कर दिया है कि उक्त प्रस्थापक वास्तव में निर्वाचक था।

12. इस प्रकार किसी व्यक्ति के लिए यह दावा करने का अवसर, कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था, केवल तभी आ सकता है, यदि उसका नामनिर्देशन-पत्र उन कानूनी अपेक्षाओं का अनुपालन करता है जो कि नामनिर्देशन-पत्र के फाइल करने की बात को शासित करती हैं न कि अन्यथा। इस दावे में कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था, आवश्यक रूप से यह विवक्षित है और उसमें यह दावा अन्तर्ग्रस्त है कि उसका नामनिर्देशन-पत्र कानून की अपेक्षाओं के अनुसार था। अतः निर्वाचन लड़ने वाला ऐसा व्यक्ति जिसके नामनिर्देशन-पत्र पर प्रस्थापकों के रूप में कम से कम दस निर्वाचकों ने और समर्थकों के रूप में कम से कम दस निर्वाचकों ने हस्ताक्षर किए हैं, जैसा कि अधिनियम की धारा 5ख(1)(क) द्वारा अपेक्षित है, यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे

ऐसे निर्वाचन लड़ने वाले की बनिस्बत जिसने अपने ही नामनिर्देशन के संबंध में अपनी सम्मति नहीं दी है, किसी भी प्रकार से अधिक सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया है, दावा कर सकता है । निर्वाचन लड़ने वाले व्यक्ति का यह दावा कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया था, अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन से अवश्य ही उद्भूत होना चाहिए । वह अधिनियम के अतिक्रमण से किसी भी प्रकार से उद्भूत नहीं हो सकता । अन्यथा ऐसा व्यक्ति जिसने अपना नामनिर्देशन-पत्र बिल्कुल ही फाइल नहीं किया था किन्तु जिसने मौखिक रूप से रिटर्निंग आफिसर को यह इत्तिला दे दी थी कि वह निर्वाचन लड़ना चाहता है, यह दलील दे सकता है कि उसे अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है ।[1]

13. अर्जीदारों का यह पक्षकथन नहीं है कि रिटर्निंग आफिसर ने उनके नामनिर्देशन-पत्रों को गलत ढंग से अस्वीकृत कर दिया था । यद्यपि उन पर प्रस्थापकों के रूप में दस या अधिक निर्वाचकों ने या समर्थकों के रूप में दस या अधिक निर्वाचकों ने हस्ताक्षर कर दिए थे । न केवल अधिनियम की धारा 5ख(1)(क) की आज्ञापक अपेक्षाओं के अननुपालन के आधार पर वे नामनिर्देशन-पत्र ठीक तौर से अस्वीकृत किये गए थे, बल्कि अर्जीदारों का यह पक्षकथन है कि उनके नामनिर्देशन-पत्र रिटर्निंग आफिसर द्वारा पूर्वोक्त उपबंध के अननुपालन के आधार पर अस्वीकृत किये गए थे । इस प्रकार उनका यह दावा कि उन्हें सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है, अधिनियम की परिधि के भीतर नहीं है, बल्कि उसके बाहर है । उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता ।

14. **चरण लाल साहू** बनाम **श्री फखरुद्दीन अली अहमद** वाले मामले में अर्जीदार ने यह दावा किया था कि उसे अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था, यद्यपि उसका नामनिर्देशन-पत्र अधिनियम की धारा 5ख और 5ग के उपबंधों के अननुपालन के आधार पर ठीक तौर से ही अस्वीकृत किया गया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि मात्र इसलिए, क्योंकि कोई अभ्यर्थी संविधान के अनुच्छेद 58 के अधीन अर्हित है, यह अर्थ नहीं निकलता है कि उसे उस विधि की अपेक्षा के अनुपालन से छूट प्राप्त है, जिसे संसद ने वह ढंग और रीति विनियमित करने के लिए जिससे या जिसमें नामनिर्देशन

---

[1] ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1288.

फाइल किए जाने चाहिएं, अनुच्छेद 71(3) के अधीन अधिनियमित किया है। चूंकि अर्जीदार ने पूर्वोक्त दोनों धाराओं के उपबंधों का पालन नहीं किया था, इसलिए यह अभिनिर्धारित किया गया कि वह यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट कर दिया गया है और इसी कारण से वह अभ्यर्थी नहीं है। परिणामतः इस न्यायालय ने इस आधार पर वह निर्वाचन अर्जी खारिज कर दी थी कि अर्जीदार को उसे फाइल करने का कोई भी अधिकार नहीं है।

15. अधिनियम की धारा 5ख(1)(क) में अन्तर्विष्ट उपबंध को अर्जीदार द्वारा इस आधार पर जो चुनौती दी गई है कि वह अभिकथित रूप से अयुक्तियुक्त है, उसमें कोई सार नहीं है। इस न्यायालय ने **चरण लाल साहू** बनाम **नीलम संजीवा रेड्डी**[1] वाले मामले में उस उपबंध की विधिमान्यता को कायम रखा था। इसके अलावा, यदि अर्जीदारों को निर्वाचन अर्जियां फाइल करने का कोई भी अधिकार नहीं है, तो उनकी सुनवाई इन अर्जियों में दी गई इन दलीलों में से किसी भी आधार पर नहीं की जा सकती है।

16. तदनुसार, प्रारंभिक विवाद्यक के संबंध में हमारा जो निष्कर्ष है, वह अर्जीदारों के विरुद्ध है। हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उन्हें निर्वाचन अर्जियां फाइल करने का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है क्योंकि इन्हें न तो सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया था और न ही वे इस बात का दावा करते हैं कि इन्हें राष्ट्रपतीय निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट किया गया है। इस निष्कर्ष को देखते हुए 1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 2 और 3 खारिज की जाती हैं।

17. यह खेद का विषय है कि भारत के राष्ट्रपति के उच्च पद के निर्वाचन को चुनौती देने वाली निर्वाचन अर्जियां इतनी अभद्र ढंग से फाइल की जाएं जैसे कि ये दोनों निर्वाचन अर्जियां फाइल की गई हैं। इन अर्जियों पर दुबारा विचार तो किया ही नहीं गया है, इसके अलावा ऐसा प्रतीत होता है कि वे बिना तैयारी के पेश की गई हैं और इन निर्वाचन अर्जियों के प्रारूपण के मामले में कोई भी तैयारी नहीं की गई है या उनमें जो दलीलें पेश की गई हैं, उनके संबंध में भी कोई तैयारी नहीं की गई है। ऐसी अर्जियों के फाइल करने की बात को हतोत्साहित

[1] [1978] 3 उम० नि० प० 1=[1978] 3 एस० सी० आर० 1.

करने की दृष्टि से, यदि हम इन दोनों अर्जीदारों के विरुद्ध भारी खर्चे के संबंध में आदेश पारित करते, तो वह न्यायोचित होता। किन्तु उसके परिणामस्वरूप अनावश्यक रूप से यह भ्रम उत्पन्न हो सकना संभाव्य है कि यह न्यायालय, जो कि अधिनियम द्वारा निर्वाचन अर्जियों को विनिश्चित करने के लिए अनन्य रूप से न्यायालय के रूप में गठित किया गया है, जिसके द्वारा राष्ट्रपतीय या उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन को चुनौती दी जाती है, ऐसी अर्जियां ग्रहण करने के लिए अनिच्छुक है। लोकतंत्र के कार्य को आगे बढ़ाने की दृष्टि से ही सार्वजनिक पदों के लिए जो निर्वाचन किये जाते हैं, स्वतंत्र अधिकरण द्वारा उनकी संवीक्षा करने का अधिकार होना चाहिए। अपने ही तथ्यों के आधार पर इन दोनों अर्जियों में भारी खर्चा सबंधी आदेश कितना ही न्यायोचित क्यों न हो, उसके परिणामस्वरूप भविष्य में साधार दावे को प्रारम्भ में ही समाप्त नहीं कर दिया जाना चाहिए। अतः हम खर्चे के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं करते हैं और इसकी बजाय हम उस हल्के-फुल्के तथा अगंभीर रीति के प्रति, जिसमें इन दोनों अर्जियों का प्रारूपण तैयार किया गया है और वे फाइल की गई हैं, अपना अननुमोदन व्यक्त करते हैं।

1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 4

18. यह निर्वाचन अर्जी भारत के राष्ट्रपति के रूप में ज्ञानी ज़ैल सिंह के निर्वाचन को चुनौती देने के लिए संसद के 27 सदस्यों ने फाइल की है। अर्जीदार इन चार विरोधी पार्टियों के हैं : लोकदल, भारत की लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी, भारतीय जनता पार्टी और जनता पार्टी। इन पार्टियों ने इस न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री एच० आर० खन्ना की अभ्यर्थिता का संयुक्त रूप से समर्थन किया था। ज्ञानी ज़ैल सिंह काफी मतों से सफल अभ्यर्थी के रूप में चुने गए।

19. चूंकि अर्जीदार संसद के सदस्य हैं, इसलिए व राष्ट्रपतीय निर्वाचन में निर्वाचक थे। अर्जी फाइल करने संबंधी उनके अधिकार को चुनौती नहीं दी जा सकती।

20. ज्ञानी ज़ैल सिंह के निर्वाचन को अर्जीदारों द्वारा दी गई मुख्य चुनौतियों में से एक चुनौती यह है कि वह भारत के राष्ट्रपति का उच्च पद धारण करने के लिए "उपयुक्त व्यक्ति" नहीं है। अर्जीदारों ने

1983(12) eILR(PAT) SC 43

अर्जी के पैरा 5 से लेकर 8 में अपनी इस दलील के समर्थन में अपने ही कारण बताए हैं। इस निर्णय में उन कारणों को दोहराने से कोई भी उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि हमारी राय यह है कि भारत के राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद को धारण करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है।

21. अर्जीदारों द्वारा पेश की गई उपर्युक्त दलील के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक उत्पन्न होता है—

> "क्या भारत के राष्ट्रपति के पद के लिए किसी अभ्यर्थी के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि वह उस पद को धारण करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है ?"

22. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 की धारा 18, जिसमें निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के आधार विनिर्दिष्ट किए गए हैं, निम्नलिखित रूप में है —

> "18. (1) यदि उच्चतम न्यायालय की यह राय है कि—
>
> (क) निर्वाचन में रिश्वत या असम्यक् असर का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी द्वारा या निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से किसी व्यक्ति द्वारा किया गया है, अथवा
>
> (ख) निर्वाचन परिणाम —
>
> (i) किसी मत के अनुचित रूप से लेने, या लेने से अनुचित रूप से इंकार करने के कारण, या
>
> (ii) सविधान के या इस अधिनियम के या इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों या किए गए आदेशों के उपबंधों के किसी अननुपालन द्वारा,
>
> (iii) इस तथ्य के कारण कि (सफल अभ्यर्थी से भिन्न) किसी ऐसे अभ्यर्थी का नाम-निर्देशन, जिसने अपनी अभ्यर्थिता वापस नहीं ली है, गलत ढंग से स्वीकार कर लिया गया है; या तात्विक रूप से प्रभावित हुआ है, या

(ग) किसी अभ्यर्थी का नामनिर्देशन गलत तौर पर प्रतिक्षेपित किया गया है या सफल अभ्यर्थी का या किसी ऐसे अन्य अभ्यर्थी का, जिसने अपनी अभ्यर्थिता वापस नहीं ली है, नामनिर्देशन गलत तौर पर प्रतिगृहीत किया गया है,

तो उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन की बाबत यह घोषणा करेगा कि वह शून्य है।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए निर्वाचन में रिश्वत और असम्यक् असर के अपराधों का वही अर्थ होगा जो भारतीय दंड संहिता के अध्याय 9क में है।"

23. अधिनियम की धारा 19 जिसमें "वे आधार विनिर्दिष्ट किए गए हैं जिन पर निर्वाचित अभ्यर्थी से भिन्न अभ्यर्थी निर्वाचित घोषित किया जा सकेगा", निम्नलिखित रूप में है —

"यदि किसी ऐसे व्यक्ति ने, जिसने अर्जी दाखिल की है, निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को प्रश्नगत करने के अतिरिक्त इस घोषणा के लिए दावा किया है कि वह स्वयं या कोई अन्य अभ्यर्थी सम्यक् निर्वाचित हो गया है और उच्चतम न्यायालय की यह राय है कि अर्जीदार को या ऐसे अन्य अभ्यर्थी को विधिमान्य मतों की बहुसंख्या वास्तव में प्राप्त हुई है तो उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के पश्चात् यह घोषणा करेगा कि यथास्थिति अर्जीदार या ऐसा अन्य अभ्यर्थी सम्यक् निर्वाचित हो गया है :

परन्तु अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी के सम्यक् निर्वाचित हो जाने की घोषणा उस दशा में न की जाएगी जिसमें कि यह साबित कर दिया जाता है कि यदि ऐसा अभ्यर्थी निर्वाचित अभ्यर्थी होता और उसके निर्वाचन को प्रश्नगत करने के लिए अर्जी दी जाती तो उसका निर्वाचन शून्य होता।"

24. चूंकि अधिनियम के केवल ये ही ऐसे उपबंध हैं जिनके अधीन निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित किया जा सकता है, इस लिए इस बात से संबंधित प्रश्न कि क्या निर्वाचित अभ्यर्थी राष्ट्रपति का पद धारण करने के लिए उपयुक्त है, इस निर्वाचन अर्जी के प्रयोजन के लिए असंगत है। अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल की गई निर्वाचन अर्जी पर विचार करते हुए यह न्यायालय इस प्रश्न की जांच नहीं कर सकता कि क्या निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद के लिए उपयुक्त

है जिसके लिए वह निर्वाचित किया गया है। निर्वाचनों से उदभूत होने वाले अधिकार जिनमें कोई निर्वाचन लड़ने या उसे चुनौती देने का अधिकार भी शामिल है, **कामन ला** विषयक आधार नहीं है। अतः इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए कि क्या कोई निर्वाचन किसी अभिकथित आधार पर अपास्त किया जा सकता है, न्यायालयों को, विशिष्ट निर्वाचनों को शासित करने वाली विधि के उपबंधों को देखना होता है। उन्हें उस विधि की परिधि के भीतर ही कार्य करना होता है और वे उसके बाहर नहीं जा सकते। केवल वे व्यक्ति ही जिनको कानून द्वारा मत देने का अधिकार प्रदत्त किया गया है, निर्वाचन में मत दे सकते हैं। प्रस्तुत मामले में वह अधिकार प्रत्येक ऐसे 'निर्वाचक' को प्रदत्त किया गया है जैसा कि वह अधिनियम की धारा 2(घ) में परिभाषित है, जिसमें निम्नलिखित उपबंध किया गया है—

> " 'निर्वाचक' से राष्ट्रपतीय निर्वाचन के संबंध में अनुच्छेद 54 में निर्दिष्ट निर्वाचकगण का सदस्य अभिप्रेत है और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के संबंध में अनुच्छेद 66 में निर्दिष्ट निर्वाचकगण का सदस्य अभिप्रेत है।"

केवल वे ही व्यक्ति जो कि किसी विशिष्ट पद पर निर्वाचित किये जाने के लिए अर्हित हैं, निर्वाचन लड़ सकते हैं। प्रस्तुत मामले में वह अधिकार अधिनियम की धारा 5क द्वारा विनियमित किया गया है, जिसमें यह उपबंध किया गया है कि—

> "यदि कोई व्यक्ति उस पद के लिए निर्वाचित होने के लिए संविधान के अधीन अर्हित है, तो वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जा सकेगा।"

कोई निर्वाचन कानून द्वारा विहित रीति से प्रश्नगत किया जा सकता है, न कि किसी अन्य रीति से। प्रस्तुत मामले में अधिनियम की धारा 14(1) में यह उपबंध किया गया है कि कोई भी निर्वाचन उप-धारा (2) में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के समक्ष निर्वाचन अर्जी उपस्थित करके प्रश्नगत करने के सिवाय, प्रश्नगत नहीं किया जाएगा। धारा 14 की उपधारा (2) द्वारा उच्चतम न्यायालय किसी निर्वाचन अर्जी का विचारण करने के लिए एकमात्र प्राधिकारी के रूप में गठित किया गया है। अन्ततः कोई निर्वाचन केवल उन्हीं आधारों पर प्रश्नगत और अपास्त

किया जा सकता है जो कि कानून द्वारा विहित किए गए हों। प्रस्तुत मामले में राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति के पद के लिए हुए निर्वाचन को अपास्त करने के लिए जो आधार हैं और वे आधार जिन पर निर्वाचित अभ्यर्थी से भिन्न अभ्यर्थी को निर्वाचित घोषित किया जा सकता है, अधिनियम की धारा 18 और 19 में अधिकथित किये गए हैं। निर्वाचन किसी अन्य आधार पर न तो प्रश्नगत किया जा सकता है और न ही अपास्त। अतः निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को राष्ट्रपति का पद धारण करने संबंधी उसकी उपयुक्तता के अभाव के आधार पर जो चुनौती दी गई है, उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और उसे अस्वीकार करना ही पड़ेगा। (**कें० वेंकटेश्वर राव** बनाम **बेक्कम नरसिंह रेड्डी**[1] और **चरण लाल साहू** बनाम **नन्द किशोर भट्ट**[2] वाले मामले देखिए)।

25. इस विधिक स्थिति के अलावा कि निर्वाचन से उत्पन्न होने वाले अधिकार कानूनी हैं, न कि कॉमन लॉ विषयक अधिकार, यह कल्पना करना असंभव है कि कोई न्यायालय किसी निर्वाचन को शून्य घोषित करने की शक्ति इस आधार पर अपने पास ले लेगा कि निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद को धारण करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है जिसके लिए वह निर्वाचित किया गया है। किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता के संबंध में निर्णय करने का कार्य मतदाताओं का है न कि न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाने का। न्यायालय मतदाताओं द्वारा व्यक्त अभिमत के स्थान पर किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता का अपना ही जायज़ा प्रतिस्थापित नहीं कर सकता। मतदाताओं का अभिमत अभ्यर्थी की उपयुक्तता के संबंध में अभिमत होता है। 'उपयुक्तता' निश्चित अभिप्राय की अस्थिर संकल्पना है। मत-पेटी ही उसका एकमात्र निर्णायक है या उसे एक मात्र निर्णायक मानना पड़ेगा। यदि न्यायालय को इस आधार पर किसी निर्वाचन को अपास्त करने की शक्ति का प्रयोग करना पड़े कि उसकी राय में निर्वाचित अभ्यर्थी उस पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है, जिसके लिए वह निर्वाचित किया गया है, तो कानून को इतना अधिक संशोधित करना होगा जिससे कि न्यायालय को वस्तुतः प्रतिद्वन्दी अभ्यर्थियों की उपयुक्तता के प्रश्न पर विशेषाधिकार का अधिकार देने के समान होगा और फिर असफल अभ्यर्थी सफल अभ्यर्थी के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती देगा कि वह पश्चात्कथित से अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार का कार्य न्यायालयों द्वारा अपने हाथ में लेना असंभव है

[1] [1969] 1 उम० नि० प० 304-[1969] 1 एस० सी० आर० 679।

[2] [1973] 3 उम० नि० प० 773-[1974] 2 एस० सी० आर० 294।

और वास्तव में सर्वाधिक उदार मानक के आधार पर भी वह न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमाओं से कहीं परे है।

26. तदनुसार निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को इस आधार पर दी गई चुनौती कि वह भारत के राष्ट्रपति का पद धारण करने के लिए उपयुक्त नहीं है, असफल होती है और अस्वीकृत की जाती है। इस विवाद्यक से संबंधित हमारा निष्कर्ष नकारात्मक है।

27. जिन आधारों पर अर्जीदारों ने प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को चुनौती दी है, वे ये हैं: (1) यह कि प्रत्यर्थी सं० 1 ने और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने "अल्पसंख्यक समुदाय के मतों को प्रभावित करने के लिए" श्री एम० एच० बेग को, जो कि उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति हैं और अब अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष हैं, इस काम के लिए लगाया था; (2) यह कि भारत सरकार के मंत्री मंडलीय स्तर के मंत्री राव वीरेन्द्र सिंह ने, जो कि प्रत्यर्थी सं० 1 के 'समर्थक और निकट सहयोगी' हैं, सरकारी तंत्र का दुरुपयोग करके मतदाताओं पर असम्यक् असर डाला क्योंकि प्रत्यर्थी सं० 1 के पक्ष में मतदाताओं को मतदान करने के लिए उसने जो वक्तव्य निकाला था, उसे भारत सरकार के प्रैस सूचना ब्यूरो ने प्रकाशित किया था; (3) यह कि प्रधानमंत्री ने प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन अभियान में भाग लिया था और उस प्रयोजन के लिए सरकारी तंत्र का दुरुपयोग किया था; (4) यह कि प्रधानमंत्री ने अकाली दल से यह साम्प्रदायिक अपील की थी कि उसके सदस्य प्रत्यर्थी सं० 1 के पक्ष में मत दें; और (5) सरकार के हैलीकाप्टर और सरकार की कारों का दुरुपयोग प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन के प्रयोजन के लिए किया गया था। अर्जीदारों ने यह अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी सं० 1 के शुभचिन्तकों और समर्थकों ने यह कार्य उसकी मौनानुकूलता से किया था।

28. श्री अशोक सेन ने यह दलील दी कि यदि इन अभिकथनों को सच मान लिया जाए, तो भी उनसे प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को अपास्त करने के लिए कोई वादहेतुक उत्पन्न नहीं होता। परस्पर-विरोधी इन दलीलों को देखते हुए हमने विचार के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए—

"यह कि क्या निर्वाचन अर्जी में किये गए प्रकथनों से, जब कि उन्हें सच और ठीक मान लिया जाए, उस आधार पर

जो कि राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 की धारा 18 (1) (क) में बताए गए हैं, निर्वाचित अभ्यर्थी (प्रत्यर्थी सं० 1) के निर्वाचन को अपास्त करने के लिए कोई वाद हेतुक प्रकट होता है।"

29. अधिनियम की धारा 18 (1) (क) में जो कि हमने अभी-अभी उपवर्णित की है, यह उपबंध किया गया है कि उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को उस दशा में शून्य घोषित करेगा, यदि उसकी राय यह है कि––

> "निर्वाचन में रिश्वत या असम्यक् असर का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी द्वारा या निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से किसी व्यक्ति द्वारा किया गया है।"

(ज़ोर देने के लिए रेखांकित)

हम रिश्वत के प्रश्न को एक तरफ रख सकते हैं क्योंकि उस निमित्त कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है। न ही यह अभिकथित है कि असम्यक् असर का अपराध स्वयं निर्वाचित अभ्यर्थी ने किया था। अर्जीदारों का अभिकथन यह है कि प्रत्यर्थी सं० 1 के कतिपय समर्थकों और निकट सहयोगियों ने उसकी मौनानुकूलता से असम्यक् असर का अपराध किया है। यह स्पष्ट है कि यदि इस अभिकथन को सच मान लिया जाए, तो भी धारा 18(1)(क) की अपेक्षाओं की पूर्ति करने के लिए वह काफी नहीं है। जिस सीमा तक वह धारा सुसंगत है, उस तक वह जिस बात की अपेक्षा करती है, वह यह है कि असम्यक् असर का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी की 'सम्मति' से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। अर्जी में इस संबंध में कोई भी अभिवाक् नहीं किया गया है कि उन अन्य व्यक्तियों ने प्रत्यर्थी सं० 1 की सम्मति से असम्यक् असर डाला था।

30. श्री शुजातुल्ला खां ने, जो कि अर्जीदारों की ओर से उपसंजात हुए हैं, यह दलील दी कि मौनानुकूलता और सम्मति दोनों एक ही बातें हैं और यह कि इन दोनों संकल्पनाओं के बीच कोई भी विधिक प्रभेद नहीं है। इस दलील के समर्थन में विद्वान् काउन्सेल ने 'कनाइवेन्स' (मौनानुकूलता) शब्द के अर्थ का अवलम्ब लिया है जैसा कि वैब्सटर की डिक्शनरी (तृतीय संस्करण, खंड 1, पृष्ठ 481); रेंडम हाउस डिक्शनरी (पृष्ठ 311); ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी (पृष्ठ 274); वर्डज़ एंड फ्रेजेज (पर्मानेंट एडीशन, खंड 8क, पृष्ठ 173), और कार्पस ज्यूरिस स्कंडम

(खंड 15क, पृष्ठ 567) में दिया गया है। इन शब्दकोशों और मूल पाठों का जो अवलम्ब लिया गया है, उससे इस विवाद्यक से संबंधित मुद्दे को और आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। विवाद्यक के विनिश्चय के लिए विचारार्थ जो सुसंगत प्रश्न है, वह यह है कि क्या अर्जी में इस प्रभाव का कोई अभिवचन है कि असम्यक् असर डालने का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से किया गया था। स्वीकृततः सम्मति के संबंध में कोई भी अभिवचन नहीं है। यह कहना कोई उत्तर नहीं है कि अर्जीदारों ने मौनानुकूलता संबंधी अभिवचन किया है और शब्दकोशों के अनुसार मौनानुकूलता से सम्मति अभिप्रेत है। सम्मति का अभिवाक् एक बात है; यह तथ्य कि मौनानुकूलता से सम्मति अभिप्रेत है (यह मानते हुए कि उसका अभिप्राय यही है) बिल्कुल दूसरी बात है। निर्वाचन अर्जी में अर्जीदार को यह अधिकार नहीं है कि वह पर्यायवाची पदों के आधार पर अभिवचन करे। इन अर्जियों में जो अभिवचन किए जाते हैं, उन्हें निश्चित, विनिर्दिष्ट और असंदिग्ध होना चाहिए जिससे कि प्रत्यर्थी को उसकी परिधि के भीतर लाया जा सके। अभिवचन का यह नियम कि वाद-हेतुक गठित करने वाले तथ्यों के संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन किया जाना चाहिए, उतना ही आधारभूत है जितना कि मौलिक। 'मौनानुकूलता' कतिपय स्थितियों में सम्मति की कोटि में आ सकती है, जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि शब्दकोशों ने 'कनाइवेन्स' (मौनानुकूलता) शब्द के अर्थों में से एक अर्थ के रूप में 'कांसेंट' (सम्मति) दिया है। किन्तु यह कहना सही नहीं है कि 'मौनानुकूलता' से सदैव और निश्चित रूप से अर्थात किसी विशिष्ट स्थिति के संदर्भ को विचार में लिए बिना ही 'सम्मति' अभिप्रेत है या वह सम्मति की कोटि में आती है। अतः दोनों को समान नहीं ठहराया जा सकता। सम्मति से यह विवक्षित है कि पक्षकार एक हैं। मौनानुकूलता से निश्चित रूप से यह विवक्षित नहीं होता है कि पक्षकारों का मस्तिष्क एक है। वे एक हो सकते हैं और एक नहीं भी हो सकते, जो बात स्थिति के तथ्यों पर निर्भर होती है। यही कारण है कि इस अभिवचन के अभाव में कि असम्यक् दबाव डालने का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से किया गया था, धारा 18(1)(क) की मुख्य बातों में से एक बात की पूर्ति नहीं हुई थी।

31. इन विषयों में विनिर्दिष्ट अभिवचन के महत्व को तभी समझा जा सकता है, यदि यह महसूस कर लिया जाता है कि विनिर्दिष्ट

अभिवाक् के अभाव में प्रत्यर्थी को काफी नुकसान होता है। उसे यह अवश्य ही ज्ञात होना चाहिए कि उसे अपना पक्षकथन किस प्रकार प्रस्तुत करना है। वह इस बात के संबंध में अटकल नहीं लगाते रह सकता कि क्या अर्जीदार का वही अभिप्राय है जो कि वह कहता है, अर्थात यह कि क्या उसका अभिप्राय यहां पर "मौनानुकूलता" से है या कि क्या अर्जीदार ने उस अभिव्यक्ति का उपयोग "सम्मति" के अर्थ में किया है। यह विचित्र है कि अर्जीदारों ने अपनी अर्जी में अभिकथित सम्मति के संबंध में कोई भी विशिष्टियां प्रस्तुत नहीं की हैं, यदि शब्द "मौनानुकूलता" के उपयोग से जो बात अभिप्रेत है, वह सम्मति है। उन्हें अपने विकल्प उस समय तक बनाए रखने की इजाज़त नहीं दी जा सकती है कि जब तक कि विचारण न हो जाए या सम्मति के संबंध में ऐसे साक्ष्य देने की इजाज़त नहीं दी जा सकती है, जैसा कि सुविधाजनक लगे या जो सरलता से उपलभ्य हो। अभिवचनों में विशिष्टतः निर्वाचन अर्जियों में निश्चितार्थता का यही महत्व है। तदनुसार, "मौनानुकूलता" शब्द के लिए "सम्मति" शब्द प्रतिस्थापित करना अनुज्ञेय है जो कि अर्जीदारों के अभिवचनों में आया हुआ है।

32. कानून के विधायी इतिहास से हमारे इस मत को समर्थन प्राप्त होता है कि धारा 18(1) (क) के प्रयोजनों के लिए मौनानुकूलता वही बात नहीं है जो कि सम्मति। मूल रूप से जबकि 1952 में अधिनियम पारित किया गया था, तो धारा 18(1) (क) में यह उपबंध किया गया था कि उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को उस दशा में शून्य घोषित करेगा जबकि उसकी राय यह है कि रिश्वत या असम्यक दबाव का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी द्वारा या निर्वाचित अभ्यर्थी की "मौनानुकूलता" से किसी व्यक्ति द्वारा किया गया है। यह उपधारा राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन (संशोधन) अधिनियम, 1974 (1974 का 5) की धारा 7 द्वारा संशोधित किए गए थे जो कि 23 मार्च, 1974 को प्रवृत्त हुआ था। संशोधन अधिनियम द्वारा "मौनानुकूलता" शब्द के स्थान पर "सम्मति" शब्द प्रतिस्थापित किया गया। यदि मौनानुकूलता का वही अर्थ था जो कि सम्मति का था और यदि दोनों एक ही बात थी तो संसद "मौनानुकूलता" शब्द लुप्त करने का और उसके स्थान पर "सम्मति" शब्द प्रतिस्थापित करने का जानबूझकर कदम न उठाती। 1974 के संशोधन अधिनियम द्वारा किए गए संशोधन से यह

दर्शित होता है कि मौनानुकूलता और सम्मति अधिनियम की धारा 18 (1) (क) के प्रयोजनार्थ सुभिन्न संकल्पनाएं हैं।

33. चूंकि स्वीकृततः निर्वाचन अर्जी में ऐसा कोई अभिवचन नहीं है कि असम्यक दबाव का अपराध निर्वाचित अभ्यर्थी की सम्मति से किया गया था, इसलिए अर्जी के बारे में यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उसमें अधिनियम की धारा 18 (1) (क) के अधीन निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को अपास्त करने के लिए कोई भी वाद-हेतुक प्रकट नहीं होता है।

34. इसके अलावा श्री अशोक सेन का यह मत ठीक है कि अर्जीदारों के पक्ष में हर बात मानते हुए और यह मानते हुए कि जो कुछ भी उन्होंने अभिकथित किया है वह सच है और ठीक है, अधिनियम की धारा 18(1) (क) के अधीन निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को अपास्त करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है। सबसे पहले हम अर्जीदारों के इस अभिकथन पर विचार करेंगे कि अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष श्री एम० एच० बेग ने प्रत्यर्थी सं० 1 के समर्थन में संयाचना की थी है। जिस प्रश्न पर हमें विचार करना है, वह यह है कि क्या ऐसा करके श्री बेग ने असम्यक असर डालने का अपराध किया है। अधिनियम की धारा 18(2) में यह उपबंध किया गया है कि धारा 18 के प्रयोजन के लिए किसी निर्वाचन में रिश्वत और असम्यक असर डालने के अपराधों का वही अर्थ है जो कि दण्ड संहिता के अध्याय 9क में उनका है। उस अध्याय में, जो कि दण्ड संहिता में 1920 के अधिनियम सं० 39 द्वारा पुरःस्थापित किया गया था, "निर्वाचन संबंधी अपराधों के विषय में" उपबंध किया गया है। दण्ड संहिता की धारा 171ख और 171ग में क्रमशः रिश्वत और असम्यक् दबाव के अपराधों की परिभाषा दी गई है। धारा 171ग निम्नलिखित रूप में है —

निर्वाचनों में असम्यक् असर डालना

"171ग. (1) जो कोई किसी निर्वाचन अधिकार के निर्बाध प्रयोग में स्वेच्छया हस्तक्षेप करता है या हस्तक्षेप करने का प्रयत्न करता है, वह निर्वाचन में असम्यक् असर डालने का अपराध करता है।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना जो कोई --

(क) किसी अभ्यर्थी या मतदाता को, या किसी ऐसे व्यक्ति को जिससे अभ्यर्थी या मतदाता हितबद्ध है, किसी प्रकार की क्षति करने की धमकी देता है, अथवा

(ख) किसी अभ्यर्थी या मतदाता को यह विश्वास करने के लिए उत्प्रेरित करता है या उत्प्रेरित करने का प्रयत्न करता है कि वह या कोई ऐसा व्यक्ति जिससे वह हितबद्ध है, देवी अप्रसाद या आध्यात्मिक परिनिन्दा का भाजन हो जाएगा या बना दिया जाएगा।

यह समझा जाएगा कि वह उपधारा (1) के अर्थ के अन्तर्गत ऐसे अभ्यर्थी या मतदाता के निर्वाचन अधिकार के निर्बाध प्रयोग में हस्तक्षेप करता है।

(3) लोक नीति की घोषणा या लोक कार्यवाही का वचन या किसी वैध अधिकार का प्रयोग मात्र, जो किसी निर्वाचन अधिकार में हस्तक्षेप करने के आशय के बिना है, इस धारा के अर्थ के अन्तर्गत हस्तक्षेप करना नहीं समझा जाएगा।"

35. इस धारा का सार यह है कि किसी निर्वाचन अधिकार के 'निर्बाध प्रयोग' में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए या हस्तक्षेप की कोशिश नहीं होनी चाहिए। 'निर्वाचन अधिकार' की परिभाषा धारा 171क (ख) में दी गई है जिससे किसी निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में खड़े होने या खड़े न होने या अभ्यर्थिता से अपना नाम वापस लेने या मत देने या मत देने से विरत रहने का किसी व्यक्ति का अधिकार अभिप्रेत है। जहां तक कि हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत है, निर्वाचन अर्जी में यह बात अवश्य ही दर्शित की जानी चाहिए कि श्री बेग ने राष्ट्रपति के निर्वाचन में मत देने विषयक मतदाताओं के अधिकार के निर्बाध प्रयोग में हस्तक्षेप किया था। निर्वाचन अर्जी में यह अभिकथित नहीं किया गया है या यह बात दर्शित नहीं की गई है कि श्री बेग ने अपनी इच्छा या अन्तरात्मा के अनुसार मत देने संबंधी मतदाताओं के अधिकार के निर्बाध प्रयोग में किसी रीति से हस्तक्षेप नहीं किया था। अर्जी में यह अभिकथित किया गया है कि श्री बेग ने मूल अधिकार वाले मामले में दिए गए

अपने निर्णय में प्रतिद्वंदी अभ्यर्थी श्री एच० आर० खन्ना की तथाकथित कमजोरियां बताकर उसकी उपयुक्तता पर प्रतिकूल टिप्पणी की है। यह मानकर कि न्यायाधीशों में परस्पर-बंधुत्व का भाव होता है और वे संस्थागत वफादारी के बंधन में बंधे रहते हैं, श्री बेग द्वारा श्री एच० आर० खन्ना पर व्यक्तिगत आक्रमण के लहजे को, जिस मनःस्थिति से वह किया गया था, पसन्द नहीं किया जा सकता। किन्तु वह बात तो मुद्दे से हटकर है। हमारा संबंध न तो श्री बेग द्वारा दिए गए वक्तव्य के औचित्य से है और न ही इस प्रश्न से है कि दोनों अभ्यर्थियों में से कौन भारत का राष्ट्रपति होने के लिए अधिक उपयुक्त है। विचार का मुद्दा यह है कि मतदाताओं को यह बताकर कि प्रत्यर्थी सं० 1 श्री खन्ना से अधिक अच्छा अभ्यर्थी है और यह कि श्री खन्ना अपने निर्णय के कारण भारत के राष्ट्रपति के पद को धारण करने के लिए उपयुक्त अभ्यर्थी नहीं होंगे, श्री बेग के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने निर्वाचन में मत डालने संबंधी मतदाताओं के अधिकार के निर्बाध प्रयोग में हस्तक्षेप किया है। यदि एक अभ्यर्थी के विरुद्ध दूसरे अभ्यर्थी के पक्ष में संयाचना करने मात्र का कार्य असम्यक् असर की कोटि में आएगा, तो इससे लोकतांत्रिक निर्वाचन की प्रक्रिया का गला ही घोंट दिया जाएगा, क्योंकि किसी अभ्यर्थी के लिए समर्थन की संयाचना करने का अधिकार उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि अभ्यर्थी का चुनाव करने के संबंध में उसके लिए मतदान करने का अधिकार होता है। अतः इस दृष्टि से कि असम्यक् असर के अपराध के बारे में यह कहा जा सके कि वह दण्ड संहिता की धारा 171ग के अर्थान्तिर्गत किया गया है, अभ्यर्थी के लिए संयाचना करने के कार्य मात्र से कोई बात अधिक दर्शित की जानी चाहिए जिसे कि अपराधी ने किया है। उदाहरण के लिए, किसी अभ्यर्थी या मतदाता को क्षति पहुंचाने की धमकी की प्रकृति में कोई बात कही जा सकती है, जैसा कि दण्ड संहिता की धारा 171ग की उपधारा 2(क) में बताया गया है, या वह अभ्यर्थी या मतदाता के मस्तिष्क में दैवी अप्रसाद का विश्वास उत्पन्न करने की बात हो सकती है, जैसा कि उपधारा 2(ख) में बताया गया है। वह अभिकथित कार्य जो कि असम्यक् अपराध गठित करता है, अभ्यर्थी या मतदाता के मस्तिष्क पर दबाव या अत्याचार की प्रकृति में होना चाहिए। विभिन्न प्रकार के ऐसे कार्यों को जो कि असम्यक् असर की परिभाषा के भीतर आते हैं, सर्वांगीण रूप से प्रगणित करना

संभव नहीं है। हमारे प्रयोजन के लिए यह कहना पर्याप्त है कि एक बात के संबंध में कोई भी सन्देह नहीं हो सकता। अभ्यर्थी के लिए संयाचना करने का कार्य मात्र दण्ड संहिता की धारा 171 ग के अर्थान्तर्गत असम्यक् असर की कोटि में नहीं आ सकता।

36. **बाबूराव पटेल** बनाम **डा० जाकिर हुसैन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने मात्र संयाचना और असम्यक् असर के प्रयोग के बीच प्रभेद पर जोर देते हुए यह मत व्यक्त किया था—

> "साधारण पदों में यह अधिकथित करना कठिन है कि कहां मात्र संयाचना का अंत होता है और कहां किसी निर्वाचन अधिकार के निर्बाध प्रयोग में हस्तक्षेप प्रारंभ होता है या हस्तक्षेप करने की कोशिश प्रारंभ होती है। यह ऐसा विषय है जो कि प्रत्येक मामले में अवधारित करना पड़ेगा; किन्तु इसके संबंध में कोई भी संदेह नहीं हो सकता है कि यदि, जो बात की गई है, वह केवल संयाचना है, तो वह असम्यक् असर नहीं होगी। जैसा कि धारा 171ग की उपधारा (3) से दर्शित होता है, किसी निर्वाचन अधिकार में हस्तक्षेप करने के आशय के बिना विधिक अधिकार का प्रयोग मात्र असम्यक् असर नहीं होगा।"

37. **शिव कृपाल सिंह** बनाम **श्री वी० वी० गिरी**[2] वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "यदि ऐसा कोई कार्य किये जाते हैं जो कि किसी मतदाता पर एक अभ्यर्थी और दूसरे अभ्यर्थी के बीच उसका चुनाव करने में उस पर मात्र असर डालते हैं तो वे निर्वाचन अधिकार के निर्बाध प्रयोग में हस्तक्षेप करने की कोटि में नहीं आएंगे"; यह कि 'निर्वाचन अधिकार के निर्बाध प्रयोग' अभिव्यक्ति को लोकतांत्रिक समाज में होने वाले किसी निर्वाचन के संदर्भ में ही पढ़ा जाना चाहिए और इसी कारण से अभ्यर्थियों और उनके समर्थकों को सभी वैध और उचित साधनों द्वारा समर्थन की याचना करने दिया जाना चाहिए। तदनुसार असम्यक् असर के अपराध के बारे में यह नहीं समझा जा सकता कि वह केवल तभी किया जाता है, यदि मतदाता को किसी प्रतिकूल परिणाम के लिए धमकी दी जाती है या उसे उसका भय दिखाया जाता है या यदि उसे यह विश्वास दिलाने के लिए उत्प्रेरित किया जाता है

---

1 [1968] 2 एस० सी० आर० 133.

2 [1971] 2 एस० सी० आर० 197, 225, 320, 321.

कि वह उस दशा में दैविक अप्रसाद या आध्यात्मिक परिनिन्दा का भाजन होगा, यदि वह अपने ही विनिश्चय के अनुसार मत डालता है या मत नहीं डालता है: "किन्तु ऐसे मामले में जहां कि केवल वह कार्य मतदाता को यह विश्वास दिलाने के प्रयोजन के लिए होता है कि विशिष्ट अभ्यर्थी ऐसा उचित अभ्यर्थी नहीं है जिस के पक्ष में मत डाला जाना चाहिए तो उस कार्य के बारे में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि वह ऐसा कार्य है जो निर्वाचन अधिकार के निर्बाध प्रयोग में हस्तक्षेप करता है।"

38. **राम दयाल बनाम संत लाल**[1] वाला मामला लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123(2) के परन्तुक (क)(ii) के अधीन असम्यक् असर का मामला था। उसमें जो अपीलार्थी था, उसने ऐसे निर्वाचन क्षेत्र में जिसमें नामधारी सिक्खों की बहुत बड़ी संख्या थी, ऐसे सिक्खों के सर्वोच्च धार्मिक नेता के प्राधिकाराधीन एक पोस्टर परिचालित किया गया था। इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इस संबंध में तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता कि धार्मिक नेता को भी निर्वाचन लड़ने वाले अभ्यर्थियों के तुलनात्मक गुणागुण के संबंध में निर्बाध रूप से अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार होता है और उनमें से ऐसे के पक्ष में संयाचना करने का अधिकार होता है जिसे वह निर्वाचकों के विश्वास के लायक समझता है। वह इस प्रकार जो आचरण करता है, वह उस निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं के विशिष्ट वर्ग के बीच अपने बहुत बड़े असर का उपयोग मात्र होगा और यह कि वह उस दशा में बहुत बड़े असर के प्रयोग की कोटि में आएगा यदि उन शब्दों से जो कि वह अपने मुख से उच्चारण करता है उन व्यक्तियों के लिए जिन्हें उसने संबोधित किया था, अपने निर्वाचन अधिकारों के प्रयोग में चुनाव करने के लिए कोई भी अवसर नहीं रह जाता है। इस मामले के तथ्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे धार्मिक नेता ने नामधारी निर्वाचकों को दिए गए अपने इन उपदेशों और चेतावनियों के कारण कि यदि उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया जाएगा, तो उससे वे दैविक अप्रसाद और आध्यात्मिक परिनिन्दा के भाजन होंगे, निर्बाध रूप से मतदान करने संबंधी उनके अधिकार के प्रयोग के लिए उनके पास कोई भी विकल्प नहीं छोड़ा था।

---

[1] (1959) सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 748, 758, 759.

39. इस प्रकार अर्जीदारों के इस अभिकथन से श्री बेग ने मतदाताओं से प्रत्यर्थी सं० 1 के पक्ष में अपना मत डालने के लिए कहा था, न कि एच० आर० खन्ना के पक्ष में इस आधार पर मत न डालने के लिए कहा था कि पश्चात्कथित प्रत्यर्थी सं० 1 की तुलना में निरापद या उपयुक्त अभ्यर्थी नहीं, दंड संहिता की धारा 171ग के अधीन असम्यक् असर का अपराध नहीं बनता है। इससे यह अर्थ निकलता है कि इस निर्वाचन अर्जी से अधिनियम की धारा 18(1)(क) में यथा-विनिर्दिष्ट असम्यक् असर के आधार पर प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को अपास्त करने के लिए कोई भी वाद-हेतुक प्रकट नहीं होता है।

40. प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को अविधिमान्य ठहराने के लिए अर्जीदारों द्वारा अभिकथित शेष आधार भ्रामक हैं। विधानमंडल ने सरकारी तंत्र का उपयोग, शासकीय स्थिति का दुरुपयोग और साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारने की अपील जहां तक कि ऐसी अपील असम्यक् असर की कोटि में नहीं आती है, इन बातों को ऐसी परिस्थितियां नहीं समझा है जो कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को अविधिमान्य ठहराएंगी। अतः यह मानते हुए कि ऐसे कोई कार्य किए गए थे, प्रत्यर्थी सं० 1 के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के लिए उनका अवलम्ब नहीं लिया जा सकता। जैसा कि हमने पहले ही मत व्यक्त कर दिया है, निर्वाचन विधियां स्वयं-पूर्ण संहिताएं हैं, और निर्वाचनों से उदभूत होने वाले अधिकार उन विधियों के परिणाम हम लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के उपबंधों को विचाराधीन कानून पर लाद नहीं सकते और तद्द्वारा राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन को चुनौती देने के लिए निर्वाचन अर्जी की परिधि में वृद्धि नहीं कर सकते। ऐसा निर्वाचन अधिनियम की धारा 18(1) में विनिर्दिष्ट आधारों पर ही अपास्त किया जा सकता है। चूंकि अर्जीदारों द्वारा किए गए अन्य अभिकथन उस उपबंध की परिधि के भीतर नहीं आते हैं, इसलिए उन्हें खारिज करना ही होगा।

41. इन कारणों से विचाराधीन विवाद्यक के संबंध में हमारा निष्कर्ष यह है कि निर्वाचन अर्जी में जो प्रकथन किए गए हैं, उन्हें सच और सही मानते हुए अधिनियम की धारा 18(1) (क) में बताए गए आधारों पर निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को अपास्त करने के लिए कोई भी वाद-हेतुक प्रकट नहीं होता ।

42. अर्जीदारों की ओर से यह दलील दी गई कि यह अधिनियम उस दशा में असांविधानिक हो जाएगा यदि उसका निर्वचन यह किया जाता है कि उससे धारा 18(1) में उपवर्णित आधारों पर राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन को चुनौती देना सीमित हो जाता है। इस दलील के समर्थन में अर्जीदारों के विद्वान् काउन्सेल ने संविधान के अनुच्छेद 71(1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों का अवलम्ब लिया जिसमें यह उपबंध किया गया है: "राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अन्तिम होगा" इस बात पर जोर दिया गया है कि संविधान ने उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न होने वाले या संसक्त किसी भी प्रकार के सन्देह या विवाद की जांच करने और उसे विनिश्चित करने की शक्ति प्रदत्त की गई है और चूंकि धारा 18(1) उस शक्ति को उसमें बताए गए आधारों तक ही सीमित कर देती है इसलिए वह अनुच्छेद 71 (1) के अधिकारातीत है। इस दलील में इस बात को नजरअन्दाज कर दिया गया है कि अनुच्छेद 71 का खंड (3) संसद को, संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति के निर्वाचनों से संबंधित या से संसक्त विषयों को विनियमित करने की विधि बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है। अनुच्छेद 71(3) द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुसरण में विधि अधिनियमित करते हुए, संसद को किन्हीं भी प्रकार की विशिष्ट शंकाओं और विवादों को विनिर्दिष्ट करने का हक होता है जिनकी जांच या विनिश्चय उच्चतम न्यायालय करेगा। यदि अर्जीदारों की दलील ठीक होती, तो हर प्रकार के काल्पनिक संदेह या तुच्छ विवाद कि जो इस धरती पर उत्पन्न हो सकता है जांच इस न्यायालय को करनी होगी और निर्वाचन अर्जियां राजनीतिक युद्ध लड़ने की उपजाऊ भूमि का काम करेंगी।

43. एक दूसरी दलील पर विचार करना रह गया है। संविधान के अनुच्छेद 58(1) में यह उपबंध किया गया है कि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा, जब वह (क) भारत का नागरिक हो, (ख) 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, और (ग) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो। अनुच्छेद 84(क) में यह उपबंध किया गया है कि कोई व्यक्ति संसद के किसी स्थान को भरने के लिए चुने जाने

के लिए तभी अर्हित होगा, जब अन्य बातों के साथ-साथ तृतीय अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए उपवर्णित शपथ ले या प्रतिज्ञान करे और उस पर हस्ताक्षर करे। अर्जीदारों की दलील यह है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन लड़ने वाले अभ्यर्थी को अनुच्छेद 84(क) द्वारा यथा-विहित शपथ अवश्य लेनी चाहिए और चूंकि प्रत्यर्थी सं० 1 ने ऐसी शपथ नहीं ली है इसलिए उसका निर्वाचन असांविधानिक है। यह दलील अस्वीकार्य है। अनुच्छेद 58 में, जिसमें "राष्ट्रपति के निर्वाचित होने के लिए अर्हताएं" विहित की गई हैं, राष्ट्रपति के निर्वाचन लड़ने के लिए पात्रता की तीन शर्तें उपबंधित हैं। इन शर्तों में से एक यह है कि अभ्यर्थी को लोकसभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के लिए अर्हित होना चाहिए। अनुच्छेद 84 में "संसद की सदस्यता के लिए अर्हता" के संबंध में उपबंध किया गया है। संसद के स्थान को कोई व्यक्ति तब तक नहीं भर सकता जब तक कि अन्य बातों के साथ-साथ उसने तृतीय अनुसूची में उपवर्णित प्ररूप के अनुसार शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है। तृतीय अनुसूची द्वारा विहित प्ररूप से यह दर्शित होता है कि यह केवल उन्हीं अभ्यर्थियों तक निर्बन्धित है जो कि संसद का निर्वाचन लड़ना चाहते हैं जैसी कि वस्तु स्थिति है ऐसा अभ्यर्थी जो कि राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन लड़ना चाहता है, तृतीय अनुसूची द्वारा विहित प्ररूप में से किसी में भी शपथ नहीं ले सकता। उस अनुसूची में ऐसे व्यक्ति के लिए जो कि राष्ट्रपति का निर्वाचन लड़ना चाहता है, शपथ लेने के लिए कोई भी प्ररूप विहित नहीं किया गया है।

44. परिणामतः 1982 की निर्वाचन अर्जी सं० 4 भी खारिज की जाती है। खर्चे के संबंध में कोई भी आदेश नहीं किया जाता है।

निर्वाचन अर्जियां खारिज की गईं।

श्री०